सद्गुरु वाणी

- जहां शिष्य के लिये जरूरी है कि वह **समर्पित** और **गुरू सेवा** में **संलग्न** रहे वहीं **गुरू** का भी यह कर्त्तव्य है कि वह शिष्य को **पूर्णता** के साथ अपनाये, उसको **ज्ञान** और **चेतना** दे, जहां उसके जीवन में **बाधायें, कठिनाईयां** आये उनको दूर करे और उसके बाद देखे कि वह **दीक्षा** के योग्य है या नहीं।
- **शिष्य और गुरू एक ही शब्द है, दो अलग-अलग शब्द नहीं हैं और न इनमें भेद किया जा सकता है।**
- **आध्यात्म** जीवन की ऐसी पगडंडी है, एक ऐसा रास्ता है जिस पर गुरू के प्रति **समर्पण** एवं **श्रद्धा** के सहारे ही चला जा सकता है। यहां पर दूसरी कोई युक्ति काम नहीं करती।

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्ण मुदच्यते,
पूर्णस्य पूर्ण मादास, पूर्ण मेवा व शिष्यते।

- **शिष्य** तभी पूर्ण होगा जब अपने आप में कुछ रखें नहीं, सब गुरू चरणों में न्यौछावर कर दें। खाली दिये में तेल भरा जा सकता है, जो पहले से भरा हुआ है, **अभिमान, क्रोध, घमण्ड, लोभ, मोह** से उसमें किसी भी प्रकार **ज्ञान रूपी तेल** की बूंद नहीं डाली जा सकती।
- यह **शिष्य धर्म** है कि वह जीवन के अंतिम क्षण तक सवेष्ट, चौबीस घंटे, प्रत्येक क्षण **गुरू सेवा** में व्यतीत करें। ऐसा ही जीवन जीने पर किसी भी प्रकार की साधना में पूर्णता प्राप्त हो सकती है, **उच्च से उच्च दीक्षा** प्राप्त हो सकती है।
- इस रास्ते पर **न आशा** चलती है, **न आज्ञा उल्लंघन** चलता है, **न निम्न पात्रता** चलती है, **न न्यूनता** चलती है और **न समर्पण में किसी प्रकार की कमी चलती है।** ऐसा ही जीवन का दृढ निश्चय हो और दृढ़ निश्चय ही न हो, यह क्रियान्वित भी हो तभी आप जीवन में वह चीज प्राप्त कर पायेंगे जो कि **पूर्णता का सूचक** है।
- अगर गुरू में पूर्ण रूप से **समर्पण** एवं **श्रद्धा** हो तो गुरू बाध्य हो जाते है कि शिष्य को सफलता प्रदान करें। फिर शिष्य किसी भी हालत में **असफल** नहीं हो सकता क्योंकि गुरू स्वयं उसकी सफलता का **उत्तरदायित्व** अपने ऊपर ले लेते हैं।
- जब शिष्य **पूर्ण समर्पण** करता है तो वह **गुरू से एकाकार** हो जाता है तथा गुरू की **समस्त शक्तियां** उसे ऊपर उठाने की ओर प्रयत्नशील हो जाती है।